ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 103-106**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

मानस में विरुद्धों का सामंजस्य : वर्तमान प्रासंगिकता

विनोद कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय, गाजियाबाद (उ0प्र0) भारत

Received-09.11.2024, Revised-16.11.2024, Accepted-22.11.2024 **E-mail : vktndrp@gmail.com**

सारांशः अपने युग के समस्त अंतर्विरोधों को समेटने का जैसा व्यापक एवं सफल प्रयास तुलसीदास द्वारा हुआ, वैसा प्रयास किसी अन्य साहित्यकार द्वारा देखने को कदाचित् नहीं मिलता है। प्रत्येक युग की अपनी समस्याएं, संघर्ष और अंतर्विरोध होते हैं। उस युग में जन्म लेने वाले महापुरुष अपने निजी सुख–दुख की परवाह न करके संपूर्ण जनमानस की समस्याओं, संघर्षों, दुखों का समाधान खोजने के लिए अपना जीवन अर्पित कर देते हैं, फिर चाहे वह राम हों, बुद्ध हों या तुलसी ।

कुंजीभूत शब्द– संघर्ष, अंतर्विरोध, महापुरुष, निजी सुख–दुख, समावेशी भावना, समन्वय, विराट चेष्टा, भक्ति मार्ग, सर्वांगपूर्णता

अन्य कवियों की प्रतिभा किसी एक क्षेत्र को लेकर चली और वहीं तक सीमित रह गई, किंतु तुलसी से काव्य संसार का कोई कोना अछूता ना रहा। प्रबंध भी, मुक्तक भी ब्रज भी अवधी भी, राम भी, कृष्ण भी, वैष्णव के साथ शैव भी। दोहा, चौपाई, बरवे, कवित्त, तुलसी की सर्व समावेशी भावना से कुछ भी छूटने नहीं पाया। समन्वय की विराट चेष्टा में तुलसी ने सूर्य की भांति भक्तिकालीन हिंदी साहित्य के कोने–कोने को प्रकाशित किया है। उनकी भक्ति और उनका भक्ति मार्ग भी किसी एक पक्ष को लेकर के नहीं चले हैं। रामचंद्र शुक्ल जी लिखते हैं, "गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है, ना उसका कर्म या धर्म से विरोध है, ना ज्ञान से।"[1] सूर्य की भांति कोई भेद नहीं सबको प्रकाशित करना है। सब तुलसी के हैं और सबके लिए तुलसी। तुलसी की समन्वय की विराट चेष्टा ही उन्हें लोकनायक बनाती है। ग्रियर्सन इसीलिए उन्हें बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक मानते हैं तो स्मिथ उन्हें मुगल काल का सबसे महान व्यक्तित्व घोषित करते हैं।

वैसे तो तुलसीदास का मूल्यांकन उनकी समस्त कृतियों के आधार पर किया जाता है किंतु उनकी अक्षय कीर्ति का आधार श्री रामचरितमानस है। मानव प्रकृति के जितने रूपों, जितनी मानवीय दशाओं, जीवन की जितनी परिस्थितियों का चित्रण और उनके मध्य सामंजस्य हमें रामचरितमानस में दिखाई पड़ता है वैसी सर्वसमावेशी भावना और सामंजस्य किसी अन्य महाकाव्य में कदाचित ही मिलता हो। यह महाकाव्य एक साथ कितने ही काव्य प्रयोजनों की पूर्ति कर लेता है। राजा–रंक, शिक्षित–अशिक्षित, उच्च–निम्न, सभी वर्गों और भेदों से परे हिंदी साहित्य जगत में मानस एकमात्र ग्रंथ है जो संपूर्ण जनमानस के मानस पटल पर जादू की भांति छाकर लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा।

मानस में तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति, शैव और वैष्णव, माया और प्रकृति, द्वैत और अद्वैत, विद्या और अविद्या में, पुरुषार्थ और भाग्य में, मानवतावाद और वर्णाश्रम धर्म, वेद शास्त्र और व्यवहार, राजा और प्रजा के मध्य जिस प्रकार भेद का परिहार करके समन्वय स्थापित किया गया, वह आज के समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक है।

जिस काल में रामचरितमानस की रचना हुई, वह मध्ययुगीन मुगल शासन का दौर था। समाज में धर्म और दर्शन के क्षेत्र में घोर भ्रम व्याप्त था। परस्पर विभेद और वैमनस्य चरम पर था। जिस प्रकार का विरोध और दुराव हिंदुओं, मुसलमान सिखों और ईसाईयों के मध्य था, कुछ उसी प्रकार का दुराव शैवों और वैष्णवों के मध्य भी पनपता जा रहा था। शैव और वैष्णव के मध्य द्वेष के इसी दौर में रामचरितमानस में शिव जी राम कथा सुनते और सुनाते हैं। राम की महिमा, राम का गुणगान करते नहीं थकते हैं, राम नाम जपते हैं, राम के दर्शनों के लिए उनके नयन व्याकुल रहते हैं। सच्चिदानंद कहकर राम की जय बोलते हैं। इस पर विश्वास न करने वालों का प्रतिनिधित्व करता है सती का चरित्र। उन्हें आश्चर्य होता है कि जगत पूज्य शिवजी एक मनुष्य रूप में जन्मे राजपुत्र की वंदना करते हैं ।

"जय सच्चिदानंद जग पावन, अस कहि चलेउ मनोज नसावन ।
चले जात शिव सती समेता, पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता ।।
सती सो दशा शंभु कै देखी। उर उपजा संदेहु विसेखी।।
संकरू जगतबंध जगदीशा, सुर नर मुनि सब नावत शीश ।।
तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानंद परधामा ।।
भए मगन छवि तास विलोकी । अजहु प्रीति उर रहति न रोकी।"[2]

सती के भ्रम का निवारण करने हेतु शिवजी का ही कथन है:

"जासु कथा कुंभज ऋषि गाई ।
भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ।।
सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा ।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ।।
मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नीति निगम पुराण आगम, जासु कीरति गावहीं ।
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित, निज तंत्र नित रघुकुल मनी।।"[3]

दूसरी ओर स्वयं राम भी शिव के आराधक हैं, भक्त हैं, वह शिवलिंग की स्थापना करके पूजन करते हैं और घोषणा करते हैं कि शिव के समान उन्हें कोई दूसरा प्रिय नहीं है। कोई उनका कितना भी बड़ा भक्त हो, पूजा आराधना करने वाला हो, किंतु यदि वह शिव जी का विरोधी है तो उनकी भक्ति कभी भी नहीं पाएगा। यथार्थ की कौन कहे, वह तो उन्हें स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकता।

"लिंग थाप विधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

सिव द्रोही मम भगत कहावा ।
सो नर सपनेहूं मोहि न पावा।।
संकर विमुख भगति चह मोरी।
सो नर की मूढ़ मति थोरी ।।
संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महु बास।।"[4]

श्रीरामचरितमानस में ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ मिलकर संसार पर नियंत्रण व संचालन की बात कही गई है। शिवजी और राम जी दोनों एक दूसरे को अपना स्वामी मानते हैं। मानस में राम के शिवजी से विवाह की प्रार्थना के अवसर पर उनके मध्य परस्पर प्रेम व सम्मान प्रदर्शित करने वाला संवाद देखिए:

"अब विनती मम सुनहूं सिव, जो मो पर निज नेहु।
जाए विवाहहु शैलजहि, यह मोहि मांगे देहु।।
कह सिव जदपि उचित अस नाही। नाथ बचन पुनि मेटि ना जाही।।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा।।
मातु – पिता गुरु प्रभु कै वानी । बिनहि विचार करिए शुभ जानी।।
तुम सब भांति परम हितकारी। आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी।।"[5]

भले ही तुलसी के इष्ट राम रहे हों किंतु उन्होंने अपनी रचनाओं में शिव, कृष्ण सहित अन्य देवताओं को भी पूर्ण महत्व दिया यह नहीं कि मेरे इष्ट देव, आराध्य देव ही सर्व शक्तिमान एकमात्र ईश्वर हैं और अन्य सभी देव महत्वहीन हैं, द्वितीय श्रेणी के हैं, मेरे देव बड़े, तुम्हारे छोटे जैसे विचार रखकर समाज में सांप्रदायिक वैमनस्य बढ़ाने वाले लोगों के लिए मानस सामंजस्य का प्रभावशाली और लोकमंगलकारी संदेश लेकर आता है। मानस में दो संप्रदायों के मध्य इस तरह का सामंजस्य अद्भुत और अभूतपूर्व है। दुनिया में कितने महान धार्मिक साहित्यों की रचना हुई, उसमें बहुत नीतिपरक उपदेश लिखे गए, सद्भावपरक और समरसता के संदेश दिए गए किंतु प्रत्येक संप्रदाय के धार्मिक ग्रंथ में उस संप्रदाय का ही गुणगान हुआ, उसके प्रवर्तकों की ही महत्ता सर्वोपरि सिद्ध करने का प्रयास हुआ। प्रत्येक संप्रदाय के अनुयाई अपने संप्रदाय और उसके प्रवर्तक को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरे संप्रदायों को तुच्छ सिद्ध करने का प्रयास करते रहे। दुनिया के अधिकतर संप्रदायों द्वारा दूसरे संप्रदायों को स्वीकृति न देने और सम्मान न करने की पीछे अपने अनुयायियों की अधिकाधिक संख्या बढ़ाने की मंशा थी। परिणामस्वरुप द्वंद का जन्म हुआ और द्वंद ने युद्ध को जन्म दिया। मानस में शिव जी के ही द्वारा निर्गुण और सगुण में अभेद सिद्ध किया गया। जो ईश्वर अगुण और अरुप है, वही भक्तों के प्रेम बस सगुण हो जाते हैं। निर्गुण और सगुण की गहरी खाई जो तत्कालीन समाज में बहुत गहरी हो रही थी, कितने सरल तरीके से उसे पाटकर भक्ति का सरस समतल मैदान तुलसी के द्वारा बनाया गया है। निर्गुण और सगुण दो विरोधी या विपरीत तत्व न होकर एक ही है –

"सगुनहि अगुनहि नहि कुछ भेदा।
गावहि मुनि पुरान बुध बेरा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
जे गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
जलुहिम उपल बिलग नहि।। "[6]

इसी प्रकार का समन्वय करते हुए मानस ज्ञान और भक्ति में भी कोई अंतर नहीं करता है और दोनों का लक्ष्य एक ही सिद्ध करता है। दोनों संसार से उत्पन्न कष्टों का नाश करते हैं ।

" भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव संभव खेदा।। "[7]

गोस्वामी जी कहते हैं कि ज्ञान विज्ञान योग वैराग्य यह सब कठोर मार्ग वाले हैं, जबकि स्त्री के समान भक्ति कोमल और मनोहर है इसीलिए प्रभु को प्रिय है, दोनों विरोधी मार्ग कैसे हो सकते हैं जबकि दोनों का एक ही लक्ष्य है वह है ईश्वर की प्राप्ति। अंतर मात्र सरलता और कठोरता का है। यदि किसी को कठोर मार्ग पर चलकर ईश्वर प्राप्ति प्रिय है तो वह भी उचित ही है ।

जीवन की दुविधाओं के समक्ष कैसे सामंजस्य स्थापित किया जाता है। वर्तमान समाज को दशरथ के प्रसंग से उदाहरण लेना चाहिए। जब कैकेई ने उनसे वर मांग कर रघुकुल रीति के अनुसार, वचन पालन और सत्य पालन का प्रश्न रखा तो उनके समक्ष विकट स्थिति थी। एक ओर प्राणों से प्रिय पुत्र और दूसरी ओर सत्य रक्षा। ह्रदय पर पत्थर रखकर पुत्र प्रेम को दबाकर वह पहले सत्यरक्षा और कुल प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं किंतु इसके पश्चात पुत्र वियोग में उनकी मृत्यु उनके पुत्र प्रेम की पराकाष्ठा है। उनका दुख उनके पित्र कर्तव्य पालन न कर सकने की विवशता थी। राज कर्तव्य उन्होंने पुत्र को वनवास देकर निभाया और पितृ कर्तव्य स्वयं के प्राण देकर। शुक्ल जी कहते हैं, "शील और नियम, आत्म पक्ष और लोक पक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की यही सर्वतोमुख रक्षा रामायण का गूढ़ रहस्य है। यह धर्म के किसी अंग को नोच कर दिखाने वाला ग्रंथ नहीं है।"[8]

श्रीरामचरितमानस सामंजस्य का महाकाव्य है, इसका सामाजिक महत्व कहीं से भी धार्मिक और साहित्यिक महत्व से कमतर नहीं है। श्रीरामचरितमानस में तत्कालीन समाज के अनेक विरोधों और संघर्षों के मध्य सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है किंतु इन सभी के मध्य वर्तमान में सर्वाधिक प्रासंगिक है संबंधों का सामंजस्य। आज भी जब देश में परिवार टूट रहे हैं, बिखर रहे हैं तो मानस में संबंधों में सामंजस्य का जैसा आदर्श प्रस्तुत है, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन, परिवार और समाज में मानस के ऐसे ही सम्बन्धों का स्वप्न देखता है। चाहे पिता–पुत्र का संबंध हो, माता–पुत्र का संबंध हो, पति–पत्नी का संबंध हो, भाई–भाई का संबंध हो, सभी के मध्य त्याग और समर्पण की जैसी उच्च भूमि रामचरितमानस में तुलसी द्वारा निर्मित की गई है, वह ऐसा आदर्श है जो यदि यथार्थ में परिवर्तित होना संभव हो सके तो कोई भी भौतिक विकास द्वारा प्राप्त सुख उस सुख की बराबरी नहीं कर सकता। यदि यथार्थ रूप में संभव ना भी हो सके तो भी वर्तमान भौतिकतावादी समाज के पाठक के मन में भी कहीं ना कहीं उन संबंधों की उच्चता के अधिकतम निकट जाने का स्वप्न तो एक बार आकार लेता ही। इस संबंध में 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में लिखी गई बच्चन सिंह की इन पंक्तियों को देखना चाहिए, "मानस में भाई–भाई, पति–पत्नी, पिता–पुत्र, सास–बहू आदि के रिश्ते विषम परिस्थितियों में तपकर खरे

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

होते हैं। आज जब रिश्तों में बिखराव आ गया है और व्यक्ति अकेलेपन की यातना से जूझ रहा है, तब वह रिश्ते और भी महत्वपूर्ण होते हैं। पाठक उन रिश्तों को लौटा लाने के लिए व्यग्र हो जाता है।"[9]

मानस में पारिवारिक संबंधों और कर्तव्यों के मध्य जैसा समन्वय पात्रों में देखने को मिलता है, वह किसी भी समाज को सुखी बनाने का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। संबंधों में तो विरोध की कहीं कोई रेखा तक दृष्टिगत नहीं होती। राम को परिवार में उपजे क्लेश और माता कैकेई की इच्छा पता लगने भर की देर थी, राम ने वनवास स्वीकार करने में तनिक भी देर नहीं की। यह मात्र माता–पिता के आज्ञा पालन व कर्तव्य पालन का प्रश्न ही नहीं था वरन आदर्श प्रेम वाले एक परिवार के मध्य उपज रहे द्वंद्व, असंतोष और विरोध के मध्य पूर्ववत प्रेम, शांति और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास भी था। राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम माने ही जाते हैं किंतु यह अन्य पात्रों यथा सीता, लक्ष्मण, भरत, उर्मिला जैसे लगभग सभी पात्रों में दिखाई देता है। वर्तमान उपभोक्तावादी समाज को ऐसा पारिवारिक सामंजस्य एक आदर्श मात्र प्रतीत हो सकता है किंतु ऐसे ही भारतीय समाज के सौंदर्य का अभाव आज के सर्वसंपन्न उपभोक्तावादी और उपयोगितावादी समाज की समस्या है। बच्चन सिंह कहते हैं, "लोग कहते हैं कि राम का पिता की आज्ञा मानकर 14 वर्षों तक वन–वन में भटकना एक यूटोपिया है, भरत का अविस्मरणीय त्याग दूसरी यूटोपिया है, लक्ष्मण का भाई का साथ देना तीसरी और सीता का पति के साथ वनगमन चौथी। पर यही तो भारतीय समाज है। आज का विघटित परिवार उस सुख की कल्पना नहीं कर सकता। जहां इसका नितांत अभाव है, वहां परिवार भी नहीं है। इसे पूंजीवाद के मध्य फेंक कर हम अपने को मुक्त नहीं कर सकते। यदि समाज की छोटी इकाई में मानवीय प्रेम खो गया है, तो देश प्रेम का दावा करने वालों का प्रेम कितना सच्चा होगा ।"[10]

रामचरितमानस के पात्रों द्वारा धर्म और कर्तव्य की दुविधा के समय उस कर्तव्य और धर्म पालन को प्राथमिकता दी गई, जिससे अपेक्षाकृत वृहद जन समूह का हित संबंधित हो, जैसे लक्ष्मण ने पति धर्म पर भ्रातृधर्म और कुलधर्म को प्राथमिकता दी, भरत ने माता की आज्ञा पालन पर भ्रातृ प्रेम और कुलधर्म को प्राथमिकता दी तो वहीं विभीषण द्वारा भ्रातृ प्रेम और कुलधर्म पर लोकधर्म को प्राथमिकता दी गई, किंतु जब भरत द्वारा अपनी माता को कठोर वचन सुनाया जाता है तो कुछ लोग संदेह में पड़ जाते हैं ऐसे लोग विभीषण को राम के साथ मिल जाने पर उसे घर का भेदिया की संज्ञा दे देते हैं ऐसी संकुचित दृष्टि वालों को ही शुक्ल जी का उत्तर है, "किसी परिमित वर्ग के कल्याण से संबंध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जन समूह के कल्याण से संबंध रखने वाला धर्म उच्च कोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है। गृहधर्म या कुलधर्म से समाजधर्म श्रेष्ठ है, समाजधर्म से लोकधर्म, लोकधर्म से विश्वधर्म जिसमें धर्म अपने शुद्ध और पूर्ण स्वरूप में दिखाई पड़ता है। "[11]

मानस में इसी प्रकार राजा और प्रजा के मध्य का सामंजस्य भी अद्भुत है। उच्च और निम्न का कहीं कोई भेद नहीं। केवट प्रसंग हो या शबरी प्रसंग, रामचरितमानस में राजा और प्रजा के मध्य जैसा प्रेम वर्णित किया गया है वैसा उस दौर के किसी अन्य महाकाव्य में दुर्लभ है। बच्चन सिंह लिखते हैं, "मानस के ग्रामवासियों और जनजातियों के भोले प्रेम को देखकर हम मनुष्यता की बुनियाद पहचानते हैं जिसे पूंजीवादी सभ्यता लगभग लील चुकी है। गांव अपने संगीत का कंपन खो चुके हैं। सरलता का छंद तोड़ चुके हैं। ऐसी स्थिति में वनमार्ग में पड़ने वाले गांव की स्त्रियों का राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति निर्हेतुक प्रेम देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। कोल, किरात, भील, निषाद जैसी अस्पृश्य जातियां राम के लिए फलों का ढेर लगा देती हैं। पलकों के पांवड़े बिछा देती हैं। शबरी के जूठे बेर खाकर राम वर्णाश्रम की रीढ़ तोड़ देते हैं।"[12]

मानस का सामंजस्यवाद आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि उसकी रचनाकाल के दौर में, जब तत्कालीन बादशाहों ,नवाबों के मध्य सत्ता के लिए पारिवारिक संघर्ष और रक्तपात हुआ करते थे। मानस ने भारतीय जनमानस को स्मरण कराया कि उसकी संस्कृति सामंजस्य की है, शील, त्याग और करुणा की है। यह मानस के शैवों और वैष्णवों के मध्य सामंजस्य का ही प्रभाव था कि देश के मंदिरों में अलग–अलग देवताओं के अलग–अलग मंदिर होने के स्थान पर सभी देवताओं की मूर्तियां एक साथ स्थापित होने का प्रचलन शुरू हुआ। आज प्रत्येक मंदिर में शिव, राम कृष्ण, दुर्गा सहित सभी महत्वपूर्ण पूज्य देवी देवताओं की मूर्तियां एक साथ विराजमान हैं और प्रत्येक हिंदू परिवार शिव और राम की एक साथ ही पूजा उपासना करता है। वर्तमान पीढ़ी में अधिकांश लोग तो शैव, वैष्णव और शाक्त शब्दों से भी परिचित नहीं रह गए हैं। हिंदू जनमानस के इतने बड़े अंतर विरोध का परिहार कर सामंजस्य स्थापित करना और उन्हें एकता के सूत्र में बांध पाना एक रचना के रूप में रामचरितमानस की अद्भुत अभूतपूर्व और अतुलनीय सफलता है। ऐसी सफलता संसार के किसी और ग्रंथ को संभव नहीं। सामंजस्यवादी और लोकमंगलवादी तुलसी मानस में कदाचित सभी धर्म के मध्य सामंजस्य स्थापित करके संपूर्ण मानवता को ही सर्वधर्म समभाव के एक सूत्र में पिरो पाते किंतु उस कथा के दायरे में दूसरे धर्म को समेटने का अवसर संभव नहीं था। आज जब दो धार्मिक संप्रदायों के मध्य तुच्छ बातों पर धार्मिक कट्टरता और कटुता का सामना करना पड़ता है, तो अनेकों विरुद्ध स्थितियों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने वाले मानस जैसे ग्रंथ की हमें तलाश होती है। आज के दलित विमर्श के दौर में शबरी प्रसंग एक तुच्छ उदाहरण प्रतीत हो सकता है किंतु इसकी महत्ता का आकलन ऐसे होना चाहिए कि मानस की रचना तब की गई थी जब समाज में जाति व्यवस्था का प्रबल प्रचलन था। अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रसंग की रचना आधुनिक आंदोलनों से बहुत पूर्व मानस में की गई थी।

वर्तमान वैश्विक उपभोक्तावादी समाज भौतिक दृष्टि से सर्व संपन्न है, किंतु सुख और शांति से बहुत दूर है, मानसिक अवसाद का शिकार है, अकेलेपन की यातना से जूझ रहा है, संयुक्त परिवार टूटने के बाद अब एकल परिवार भी विघटित हो रहे हैं और व्यक्ति अपनों के मध्य भी सुरक्षित नहीं है। प्रेम, विश्वास समर्पण और त्याग का नितांत अभाव झेल रहा व्यक्ति आभासी समाज में मशीनों के सहारे आभासी सुख खोज रहा है। ऐसे में ही मानस के रिश्ते, परिवार और समाज अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो उठते हैं ।

वर्तमान में मानस की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है, बात चाहे अतीत की हो या वर्तमान की, भारत भूमि की हो या अन्य देशों की, सार्वभौमिक और सर्वकालिक रूप से सिद्ध बात यही है कि किसी समाज की सुख शांति उसकी भौतिक उन्नति पर निर्भर न होकर इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज के रिश्तों में कितना समर्पण और कितना सामंजस्य है। फिर चाहे वह रिश्ता पारिवारिक हो या सामाजिक, सामंजस्य की प्रासंगिकता किसी एक कालखंड के लिए ना होकर हर उस युग में रहेगी जिस युग में सुख शांति वांछनीय रहेगी। वर्तमान समाज भले ही भौतिक उन्नति की नित नई ऊंचाइयां छू रहा हो, समाज के सुख का मापन उसकी आर्थिक समृद्धि पर निर्भर न होकर इस बात पर निर्भर है कि उसके पारिवारिक सामाजिक रिश्ते मानस के आदर्श से कितने दूर हैं या कितने निकट हैं। मानस में सामंजस्यवाद का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यह किन्हीं दो विरोधी भावों, परिस्थितियों, व्यक्तियों या समूहों के मध्य का सामंजस्य नहीं बल्कि उन सभी भावों, स्थितियों, परिस्थितियों, व्यक्तियों और समूहों के मध्य का सामंजस्य है जो मानव पीड़ा और द्वंद्व का परिहार कर सुख और शांति की सृष्टि करता है ।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पवन पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पुनर्मुद्रण 1997, पृष्ठ 101.
2. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस ,गीता प्रेस, पुनर्मुद्रण संवत 2068, पृष्ठ 71.
3. वही, पृष्ठ 72,73.
4. वही पृष्ठ 774.
5. वही पृष्ठ 93.
6. वही पृष्ठ 128.
7. वही पृष्ठ 1024.
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, त्रिवेणी (संपादक डॉ. रामचंद्र तिवारी) विश्वविद्यालय प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 2002, पृष्ठ 102.
9. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 144.
10. वही।
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि (मानस की धर्म–भूमि), हिंदी साहित्य सरोवर आगरा, 1992, पृष्ठ संख्या 138.
12. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 144.

*****